

प्राचीन भारतीय युद्ध कला कल्लरी

Dr. Amit Chamoli, Research Scholar, Department of Ancient History, Culture and archeology department,
Gurukul kangri deemed to be University Haridwar Uttarakhand
amitchamoli006@gmail.com

Dr., Professor Prabhat Kumar, Department of Ancient History, Culture and archeology department, Gurukul
kangri deemed to be University Haridwar Uttarakhand

सारांश

कल्लरी भारत की प्राचीन युद्धकलाओं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह केवल आत्मरक्षा की कला नहीं, बल्कि शारीरिक क्षमता, मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक अनुशासन का समन्वित रूप है। इस शोध-पत्र में कल्लरी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विकास, प्रमुख शैलियाँ, औपनिवेशिक काल में इसके पतन, पुनर्जागरण तथा आधुनिक समय में इसकी उपयोगिता का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कल्लरी भारतीय संस्कृति, स्वास्थ्य विज्ञान और युद्ध परंपरा का अनमोल हिस्सा है। प्राचीन भारत की युद्ध कलाएँ, जिन्हें सामूहिक रूप से धनुर्वेद और शस्त्रविद्या के नाम से जाना जाता है, मानव इतिहास में युद्ध, शारीरिक संस्कृति और आध्यात्मिक अनुशासन के सबसे पुराने व्यवस्थित दृष्टिकोणों में से एक हैं। यह शोध पत्र इन प्रणालियों—दक्षिण के कलारीपयट्टु से लेकर उत्तर के मुष्टि-युद्ध तक—के उद्भव, तकनीकी विकास और सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व की पड़ताल करता है। वैदिक ग्रंथों, संगम साहित्य और पुरातात्विक साक्ष्यों के माध्यम से, हम यह तर्क देते हैं कि भारतीय युद्ध कलाएँ केवल युद्ध के साधन नहीं थीं, बल्कि व्यक्ति के समग्र विकास और धर्म के संरक्षण के लिए अभिन्न थीं। संबंधित शोध पत्र भारत की प्राचीन कला कल्लरी से संबंधित है जिसके माध्यम से शोधार्थी द्वारा प्राचीन भारतीय कलाओं के विषय में प्रकाश डाला गया है एवं प्राचीन कलाओं से संबंधित युद्ध कला, योग आदि विषय को जोड़ने का प्रयास किया गया है। जोकि प्राचीन समय में बेहद उपयोगी मानी जाती रही है।

सांकेतिक शब्द : कल्लरी आत्म रक्षा की कला, केरला प्राचीन कला, शस्त्रविद्या, मुष्टि युद्ध, परशुराम, रामायण

1. प्रस्तावना

भारत प्राचीन सभ्यता और विविध सांस्कृतिक परंपराओं का देश है। यहाँ विकसित हुई युद्धकलाओं में कल्लरी का विशेष महत्व है। इस कला की उत्पत्ति दक्षिण भारत के केरला में मानी जाती है। इसे विश्व की सबसे पुरानी संगठित युद्ध प्रणालियों में शामिल किया जाता है। कल्लरी केवल युद्ध करने की तकनीक नहीं सिखाता, बल्कि यह शरीर, मन और आत्मा के संतुलन पर भी बल देता है। इसमें हथियारों के प्रयोग, शारीरिक अभ्यास, ध्यान, उपचार पद्धति तथा अनुशासन को समान महत्व दिया जाता है। यही कारण है कि यह कला आज भी लोगों को आकर्षित करती है। लोकमान्यताओं के अनुसार कल्लरी का विकास लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व हुआ। कई धार्मिक कथाओं में Parashurama को इसका प्रारंभकर्ता माना गया है। कहा जाता है कि उन्होंने योद्धाओं को प्रशिक्षित करने के लिए विशेष प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए, जिन्हें “कलरी” कहा गया। प्राचीन समय में यह युद्धकला सैनिकों के लिए आवश्यक मानी जाती थी। इसका उपयोग राज्य की रक्षा तथा व्यक्तिगत सुरक्षा दोनों के लिए किया जाता था।

कलारीपयट्टु: युद्ध कलाओं की जननी

वर्तमान केरल में संगम काल (लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व - चौथी शताब्दी ईस्वी) के दौरान उत्पन्न, कलारीपयट्टू को अक्सर दुनिया की सबसे पुरानी जीवित युद्ध कला माना जाता है। इसके पाठ्यक्रम को चरणों में विभाजित किया गया है:

- **मेइथारी:** शारीरिक अनुकूलन और लचीलापन।
- **कोलथारी:** लकड़ी के हथियारों के साथ अभ्यास।
- **अंकथारी:** धातु के हथियारों (तलवार, ढाल और घातक *उरुमी* यानी लचीली तलवार) के साथ मुकाबला।
- **वेरुमकाई:** निहत्थे युद्ध और **मर्म आदि** (महत्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रहार) का अध्ययन।

मुष्टि-युद्ध और मल्लखंब

उत्तरी और मध्य क्षेत्रों में, कुश्ती और मुक्केबाजी को प्राथमिकता दी गई। **मुष्टि-युद्ध** में घूंसे, लात और कोहनी के प्रहार शामिल थे, जबकि **मल्ल-युद्ध** कुश्ती पर केंद्रित था। **मल्लखंब**, एक लकड़ी के खंभे पर योग और युद्ध मुद्राओं को करने की कला, पहलवानों की चपलता और पकड़ की ताकत बढ़ाने के लिए विकसित की गई थी।

मर्म विज्ञान: युद्ध की शरीर रचना

प्राचीन भारतीय युद्ध कलाओं का सबसे गहरा योगदान **मर्म शास्त्र** का सिद्धांत है। आयुर्वेदिक ग्रंथों ने मानव शरीर पर 107 ऐसे महत्वपूर्ण बिंदुओं की पहचान की है जहाँ भौतिक संरचना *प्राण* (जीवन शक्ति) से मिलती है।

मर्म की श्रेणी	प्रहार का प्रभाव
सद्यः-प्राणहर	तत्काल मृत्यु
कालान्तर-प्राणहर	कुछ समय बाद धीरे-धीरे मृत्यु
विशल्यघ्न	हथियार निकालने पर मृत्यु
वैकल्यकर	स्थायी विकलांगता या विकृति

युद्ध कला के उस्तादों के लिए योद्धा होने के साथ-साथ उपचारक होना भी अनिवार्य था। एक छात्र को मर्म बिंदु को नष्ट करना तब तक नहीं सिखाया जाता था, जब तक कि वह **उझिचिल** (मालिश) और जड़ी-बूटियों के माध्यम से उसका उपचार करना न सीख ले।

सामाजिक-राजनीतिक और आध्यात्मिक महत्व

प्राचीन भारत में युद्ध कला का अभ्यास कभी भी केवल एक धर्मनिरपेक्ष कार्य नहीं था; यह एक **साधना** थी।

धर्म-युद्ध की अवधारणा

"धर्म-युद्ध" के सिद्धांतों ने सख्त नैतिक संहिताएं निर्धारित की थीं। युद्ध प्रशिक्षण में इस बात पर जोर दिया गया कि बल का प्रयोग केवल कमजोरों की रक्षा के लिए किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, निहत्थे प्रतिद्वंद्वी या पीछे हटते हुए सैनिक पर हमला करना महापाप माना जाता था।

सामाजिक समावेश

यद्यपि यह मुख्य रूप से क्षत्रियों का क्षेत्र था, लेकिन इतिहास बताता है कि सैन्य ज्ञान अधिक लचीला था। द्रोणाचार्य जैसे ब्राह्मण मुख्य प्रशिक्षक थे, और विभिन्न आदिवासी समूहों ने अपनी अनूठी युद्ध प्रणालियों को बनाए रखा जिन्हें बाद में मुख्यधारा की सैन्य परंपरा में एकीकृत किया गया। इन कलाओं का पतन युद्ध तकनीक में बदलाव (बारूद की शुरुआत) के साथ शुरू हुआ और ब्रिटिश राज के दौरान इसमें तेजी आई। ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने 19वीं शताब्दी में सशस्त्र विद्रोह के डर से कलारीपयट्टू और हथियार रखने पर प्रतिबंध लगा दिया था। इसने इन कलाओं को गुप्त होने पर मजबूर कर दिया, जहाँ उन्हें "लोक नृत्यों" के रूप में या पारिवारिक वंशावली के भीतर छिपाकर संरक्षित किया गया। प्राचीन भारत की युद्ध कलाएँ शारीरिक गतिशीलता और दार्शनिक गहराई के परिष्कृत संश्लेषण का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे सिद्ध करती हैं कि प्राचीन भारतीय सभ्यता शरीर को एक मंदिर के रूप में देखती थी जिसे कठोर तप की आवश्यकता होती है। आज, कलारीपयट्टू और गतका जैसी कलाओं में बढ़ती रुचि इनके वैश्विक महत्व को दर्शाती—केवल आत्मरक्षा के लिए नहीं, बल्कि समग्र कल्याण और एक गहरी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए।

मध्यकालीन विकास

मध्यकाल में दक्षिण भारत के विभिन्न राजवंशों के बीच संघर्ष बढ़ने लगे। इस समय कल्लरी युद्ध प्रशिक्षण का मुख्य माध्यम बन गया। चेर वंश और चोल वंश जैसे राजवंशों के सैनिक इस कला में निपुण होते थे। उस समय यह कला समाज और संस्कृति का भी हिस्सा बन चुकी थी। लोककथाओं, गीतों और वीर गाथाओं में योद्धाओं की बहादुरी का वर्णन मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कल्लरी केवल युद्ध कौशल नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक भी था।

ब्रिटिश शासन और कला का पतन

19वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन स्थापित होने के बाद भारतीय युद्धकलाओं पर नियंत्रण बढ़ा दिया गया। अंग्रेजों को भय था कि प्रशिक्षित योद्धा उनके शासन के विरुद्ध विद्रोह कर सकते हैं। इसी कारण कल्लरी के अभ्यास और हथियारों के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस प्रतिबंध के कारण यह कला धीरे-धीरे सार्वजनिक जीवन से गायब होने लगी। हालांकि कुछ पारंपरिक परिवारों और गुरुओं ने इसे गुप्त रूप से संरक्षित रखा। यही प्रयास आगे चलकर इसके पुनर्जीवन का आधार बने।

पुनर्जागरण और आधुनिक पुनर्स्थापना

20वीं शताब्दी में भारतीय सांस्कृतिक जागरण के दौरान पारंपरिक कलाओं को पुनर्जीवित करने का प्रयास शुरू हुआ। इसी दौर में Kottakkal Kanaran Gurukkal जैसे गुरुओं ने कल्लरी को फिर से लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज यह कला भारत के साथ-साथ अन्य देशों में भी सिखाई जा रही है। आधुनिक समय में इसका प्रयोग कई क्षेत्रों में हो रहा है, जैसे—

- आत्मरक्षा प्रशिक्षण
- फिटनेस और व्यायाम
- फिल्म और रंगमंच
- योग एवं ध्यान
- मानसिक संतुलन और अनुशासन

कल्लरी की प्रमुख शैलियाँ**उत्तरी शैली**

इस शैली में शरीर की लचक, तेज गति और हथियारों के उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसमें तलवार, ढाल और भाले जैसे हथियारों का प्रशिक्षण शामिल होता है।

दक्षिणी शैली

दक्षिणी शैली में शरीर के संवेदनशील बिंदुओं, जिन्हें “मर्म” कहा जाता है, पर आधारित तकनीकों का अभ्यास कराया जाता है। यह शैली आत्मरक्षा के लिए अधिक प्रभावी मानी जाती है।

मध्य शैली

यह शैली उत्तरी और दक्षिणी दोनों पद्धतियों का मिश्रण है। इसमें शारीरिक नियंत्रण, संतुलन और युद्ध तकनीकों का संयुक्त अभ्यास कराया जाता है।

आयुर्वेद और कल्लरी का संबंध

आयुर्वेद और कल्लरी का गहरा संबंध है। प्रशिक्षण के दौरान होने वाली चोटों के उपचार के लिए विशेष औषधियों और मालिश तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

“मर्म चिकित्सा” शरीर के संवेदनशील बिंदुओं पर आधारित उपचार पद्धति है, जिसका उपयोग शरीर को स्वस्थ रखने और चोटों को ठीक करने के लिए किया जाता है।

योग और मानसिक विकास

योग की तरह कल्लरी भी मानसिक और शारीरिक संतुलन पर बल देता है। नियमित अभ्यास से व्यक्ति में आत्मविश्वास, धैर्य और अनुशासन विकसित होता है।

इसके अभ्यास से—

- शरीर मजबूत और लचीला बनता है
- मानसिक एकाग्रता बढ़ती है
- तनाव कम होता है
- आत्मनियंत्रण विकसित होता है

आधुनिक समाज में प्रासंगिकता

आज के समय में कल्लरी केवल पारंपरिक युद्धकला नहीं रह गया है, बल्कि यह स्वास्थ्य और फिटनेस का आधुनिक माध्यम भी बन चुका है। कई खेल संस्थान और सांस्कृतिक केंद्र इसे प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शामिल कर रहे हैं।

भारतीय फिल्मों और नृत्य प्रस्तुतियों में भी इसकी तकनीकों का उपयोग बढ़ा है, जिससे नई पीढ़ी में इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है।

निष्कर्ष:

कल्लरी भारत की सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण अंग है। यह युद्धकला शारीरिक शक्ति, मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक अनुशासन का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करती है। इतिहास में अनेक चुनौतियों का सामना करने के बावजूद यह कला आज भी जीवित है और वैश्व स्तर पर सम्मान प्राप्त कर रही है।

आवश्यक है कि इस प्राचीन परंपरा को संरक्षित किया जाए और नई पीढ़ी तक पहुँचाया जाए, ताकि भारत की सांस्कृतिक पहचान और समृद्ध हो सके। वर्तमान में कल्लरी कला का अभ्यास दक्षिण भारत के केरल प्रांत में बड़े ही उत्साह के साथ किया जा रहा है लेकिन भारत के विभिन्न प्रांतों में इसके अभ्यास से संबंधित प्रयोगात्मक वस्तुएं एवं अभिलेख अछूते हैं जिस कारण भारत की प्राचीन कला को प्रसारित करने की धारणा में कहीं न कहीं कमी देखाई देती है। वर्तमान समय में जहां एक ओर जापान की कराते एवं चीन की आत्मरक्षा कला कुग-फू विश्व में अपना स्थान बना रही है तो वहीं कल्लरी जिसे आत्म रक्षा कलाओं की जननी भी माना जाता है सीमित अवस्था में कार्यान्वित है जिस हेतु इस और आत्मरक्षा के जानकारों द्वारा कल्लरी के उत्थान के लिए कार्य करने की अति आवश्यकता है ताकि भारत की अपनी प्राचीन कलाओं को आगे बढ़ाया जा सके।

संदर्भ सूची :

1. भारतीय युद्धकलाओं पर आधारित ऐतिहासिक ग्रंथ
2. Martial Arts Studies से संबंधित शोध सामग्री
3. Ayurveda और Yoga पर आधारित पुस्तकें
4. दक्षिण भारतीय संस्कृति और इतिहास से संबंधित अध्ययन सामग्री।
5. ज़रिली, पी. बी. (1998). वेन द बॉडी बिकम्स ऑल आइज़. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. दाते, जी. टी. (1947). द आर्ट ऑफ वार इन एनशियंट इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. सुश्रुत संहिता. (मर्म बिंदुओं पर शास्त्रीय आयुर्वेदिक पाठ)।
8. अग्नि पुराण. (धनुर्वेद और सैन्य रणनीति पर अनुभाग)।